



संगीतकला की उत्पत्ति एवं विकास

डॉ० अशोक कुमार दुबे

एसोसिएट प्रोफेसर—संस्कृत, बी०एस०एन०वी० पी० जी० कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

भारतीय संगीतकला का उद्गम सृष्टि के अरुणोदय काल में उस पुण्य बेला में हुआ जब ब्रह्मा ने मानव का सृजन किया था। उसी समय लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने संगीतकला की भी सर्जना कर दी। प्रकृति की गोद में अवतरित संगीतकला में शनैः शनैः विकसित पल्लवित एवं पुष्पित हो अपने सौरभ से विश्व के प्रांगण में प्रसारित कर दिग्दगन्तों को सुरभित किया है। जीवन के अरुणोदयकाल से लेकर अब तक संगीतकला की अविच्छिन्न धारा अबाध गति से अनवरत प्रवाहित होती चली आ रही है और उसकी गति में निरन्तर विकास होता रहा है। प्राग्वैदिक कालीन मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा नामक स्थानों जो उत्खनन हुआ है उसमें प्राप्त अवशेषों से तत्कालीन संगीतकला की रूपरेखा का ज्ञान होता है। हड़प्पा में एक नृत्यरत पुरुष की खंडित मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें नर्तक का दायों पैर भूमि पर टिका हुआ है और बायाँ पैर नृत्यक्रिया में ऊपर उठाया गया है। नृत्यकलाविशारद विद्वान् इसे नटराज शिव का स्वरूप मानते हैं। इसी प्रकार मोहनजोदड़ो में एक कांस्य मूर्ति उपलब्ध हुई है जिसमें सुकोमल नारी का ललित अभिनय अंकित है। नर्तकी का शरीर प्रायः अनावृत अवस्था में है। केश जूडे में बँधे हुए हैं और दोनों हाथों में पर्याप्त चूड़ियाँ अंकित हैं। दायों पैर एक स्थान पर टिका है और बायाँ पैर नृत्य की मुद्रा में आगे बढ़ा हुआ है। दायों हाथ कमर पर टिका हुआ है और बायाँ हाथ नीचे की ओर लटका हुआ है। ऐसा लगता है कि नर्तकी अभी थिरक उठेगी। इनके अतिरिक्त हड़प्पा में प्राप्त एक चित्र व्याघ्र के सामने ढोल बजाते हुए एक पुरुष अंकित है। इसी प्रकार दो अन्य मुद्राओं पर ढोल अंकित है जिसके मुख चर्म से आबद्ध है। इसी प्रकार ढोल की आकृति का एक वाद्य एक मृत्तिका की मूर्ति के गले में लटकता हुआ प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त झांझ और करताल जैसे वाद्य भी यहाँ उपलब्ध हुए हैं। इन मूर्तियों एवं चित्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस समय संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, नृत्य एवं वाद्यों द्वारा लोकरंजन किया जाता था। नृत्य के साथ गीत एवं वाद्यों की संगत भी की जाती थी। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा तत्कालीन संगीतकला की समृद्धि का ज्ञान होता है।

मूल शब्द: वैदिक युग, यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, वैदिक वाङ्मय।

प्रस्तावना

वैदिक युग में संगीतकला का विकास हो चुका था। वैदिक ऋषि स्तोत्रों का गान विविध प्रकार से करते थे। ऋग्वेद में गीत प्रकारों में गति, गाथा, गायत्र, और साम के नाम मिलते हैं गाथा वह गीत प्रकार है जिनका गायन लौकिक एवं धार्मिक समारोहों पर किया जाता था। ऋग्वेद में गीत के लिए 'गायत्र' शब्द भी प्राप्त होता है। साम-गान का उल्लेख ऋग्वेद में अधिक पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेदकाल में सामगान का बहुत प्रचार था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर साम का गान होता था। ऋग्वेदकाल में गायन के साथ वादन का निरन्तर साहचर्य रहा है। ऋग्वेद में दुन्दुभि, वाण, वेणु, कर्करि, नाडी, अधाटि और वीणा आदि वाद्यों के नाम पाये जाते हैं। इनमें दुन्दुभि और वाण का उल्लेख ऋग्वेद में कई बार आया है। 'वाण' एक एकतन्त्रीवाद्य है जिसकी ध्वनि की उपमा पर्जन्य-धारा से दी गई। 'कर्करि' एक वाद्यविशेष है। 'गर्गर' गर्गर ध्वनि करने वाला एक वाद्य है। 'आघाटि' परखी से निर्मित वाद्य है। 'नाडी' एक सुषिर वाद्य है जो फूक कर बजाया जाता है। वीणा एक तन्त्रीवाद्य है। ऋग्वेदभाष्य में 'वीणा' के सम्बन्ध में निम्न आख्यायिका मिलती है किसी समय असुरों ने कण्व ऋषि को अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया था और उनकी आँखों को भी बंद कर दिया था। असुरों ने कहा कि यदि उनमें ब्राह्मणत्व है तो बिना नेत्रों के उषागमन की बात बतायें। तब अश्विनौ ने अपने प्रातःकालीन वीणावादन से उन्हें उषाकाल की सूचना दे दी। तब असुरों ने उन्हें मुक्त कर दिया। ऐतरेय आरण्यक में वीणा के दो

प्रकार बताये हैं—दैवी और मानुषी। ऋग्वेद में गीत एवं वाद्य के साथ नृत्यकला का भी बाहुल्य पाया जाता है। अरुणोदय कालिक धूमिल प्रकाश में विश्व में स्वर्णिम आभा विखरने वाली रम्य उषा को देखकर वैदिक ऋषि को सुसज्जित नर्तकी का विभ्रम हो जाता है। उस समय नृत्यकला का आयोजन खुले मैदान में होता था जिसमें नर-नारी दोनों सम्मिलित होते थे। ऋग्वेदकालीन 'समन' नामक सामाजिक उत्सव में नर-नारी मिलकर रात रात भर नृत्य करते थे। महाव्रत नामक सोमयाग में दासियों का सामूहिक नृत्य होता था जिनमें तीन से छः स्त्रियाँ शिर पर गगरी रखकर वर्तुलाकर गति से नाचती थी। इस प्रकार ज्ञात होता है कि ऋग्वेद काल में अनेक प्रकार के संगीत के कार्यक्रम होते थे। धार्मिक एवं लौकिक उत्सवों पर नृत्य, गीत, वाद्य तीनों का विशेष आयोजन होता था। यजुर्वेद में संगीतकला के विकास का उत्कर्ष दिखाई देता है। यजुर्वेद के ब्राह्मणों तथा आरण्यकों से स्पष्ट है कि उस समय साम का गायन केवल सामगायकों तक ही सीमित न था बल्कि अन्यान्य वैदिक शाखाओं में भी प्रचलित था। वैदिक संगीत का महत्वपूर्ण अंग 'स्तोम' स्तवन की एक विशिष्ट प्रणाली है। ऋचाओं के विशिष्ट क्रम एवं आवृत्ति से 'स्तोम' का निर्माण होता है। आधुनिक संगीत में गायक गीत की एक ही पंक्ति को विभिन्न प्रकारों से गाकर गीत में नवीनता प्रदान करता है तथा नव-नव रागरूपों का निर्माण करता है। ठीक उसी प्रकार 'स्तोम' विभिन्न पर्यायों में कल्पित किया जा सकता था। अन्यथा एक ही ऋचा को अनेक बार आवृत्त कर गाने का कोई तुक ही नहीं था। यजुर्वेद में विशिष्ट सामों का सम्बन्ध

विशिष्ट ऋतुओं से निर्दिष्ट किया गया है जैसे रथन्तर साम का गान बसन्त ऋतु में, बृहत्साम का ग्रीष्म ऋतु में, वैरुप का वर्षा ऋतु में तथा शाक्वर एवं रैवत का हेमन्त ऋतु में गान विहित है। यजुर्वेद में दुन्दुभि, वीणा, तूणव, वाण, संख और तलव आदि वाद्यों का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता में दुन्दुभि, तूणव और वीणा के सम्बन्ध में एक आख्यायिका उपलब्ध है कि बार वाग्देवी किसी कारणवश देवों से अप्रसन्न होकर वनस्पतियों में प्रविष्ट हो गई थी तभी से वाणी दुन्दुभि, तूणव, वीणा आदि काष्ठनिर्मित वाद्यों से ध्वनित होती है। तैत्तिरीय संहिता में बताया गया है। कि 'वाण' नामक वाद्य में सौ तन्त्रियाँ होती थी। यजुर्वेद के अनुसार 'वाण' का एक विधान तन्तुवाद्य था और 'वीणा' उसका छोटा रूप है। वीणा को यजुर्वेद में साक्षात् 'श्री' रूप बताया गया है। यजुर्वेद में गीत और वाद्य के साथ नृत्य भी वर्णित है। महाव्रत नामक सोमयाग में शिर पर कलश धारण करने वाली दासियों के मण्डलाकार नृत्य का आयोजन होता था। नृत्य एवं गीत के साथ वीणा आदि वाद्यों की संगत की जाती थी। उपर्युक्त सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि यजुर्वेद काल में संगीतकला का विकास हो चुका था। लौकिक एवं धार्मिक अवसरों पर नृत्य, गीत एवं वाद्यों का आयोजन होता था और संगीत को सुनकर लोग इतने आत्मविभोर हो जाते थे कि रात भर जागते रहते थे।

सामवेद— संगीतकला के विकास की दृष्टि से सामवेद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामवेद के कौथुम शाखा में चार प्रकार के गानग्रन्थ बताये गये हैं— ग्रामेगेयमान, आरण्यकगान, ऊहगान और ऊह्मगान। इनमें ग्रामेगेयमान और आरण्यकगान दोनों प्रकृतिगान हैं और इन्हें 'योनिगान' भी कहते हैं। ऊहगान और ऊह्मगान इन दोनों गान प्रकारों का आधार उपरिनिर्दिष्ट दोनों गान ग्रन्थ ग्रामेगेयमान तथा आरण्यकगान है। वैदिक साहित्य में सामगान का सर्वाधिक महत्त्व रहा है। साम के गानपक्ष के सम्यक् निर्वाह के लिए सामगीतों को विभिन्न विभागों में विभाजित किया गया था। वैदिक साहित्य में सामगान के पाँच प्रकार बनाये हैं— प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। इन्हें 'भक्ति' भी कहते हैं।

1. प्रस्ताव— यह भाग 'हुम्' से प्रारम्भ होता है और इसका ऋत्विज 'प्रस्तोता' होता है। जैसे— हु ओग्वाइ'।
2. उद्गीथ— यह भाग 'ओम्' से प्रारम्भ किया जाता है और इसका ऋत्विज 'उद्गाता' होता है। जैसे— "ओम् आयाहि वीतये गुणानो हव्यदातये"।
3. प्रतिहार— यह दो विभागों को जोड़ने वाला होता है और इसका ऋत्विज 'प्रतिहर्ता' कहलाता है। जैसे— "नि होता सत्सि वर्हिषि ओम्"।
4. उपद्रव—प्रतिहर्ता के द्वारा किये गये भाग का खण्डशः गान मुख्य उद्गाता पुनः करता है। इसका ऋत्विज 'उद्गाता' होता है। जैसे— "नि होता सत्सि व"।
5. निधन— प्रतिहार का शेषभाग जिसे 'ओम्' को जोड़कर विभिन्न विभाग के रूप में गाया जाता है उसे 'निधन' कहते हैं। इस भाग को प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता तीनों ऋत्विज मिलकर गान करते हैं। जैसे— हृषिर्ओम्।

वैदिक वाङ्मय में तीन प्रकार के स्वर स्वीकार किये गये हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक काल में मन्त्रों का गान इन्हीं स्वरों में किया जाता था। इन तीन स्वरों से साम के सप्त स्वरों का विकास हुआ है। सामवेद के प्रातिशाख्य ग्रन्थों से स्पष्ट है कि साम में ऋग्वेद के समान तीन ही स्वरों का प्रयोग होता रहा है और उनका अभिधान उदात्त, अनुदात्त और स्वरित रहा। इन्हीं स्वरों के उच्चतर ध्वनियों के लिए उच्चैस्तर (उदात्ततर) तथा सत्रतर (अनुदात्ततर)

अभिधानों का प्रयोग होता रहा है। इन्हीं से विकसित होकर साथ के सप्त स्वरों का निम्न अभिधान पड़ा—कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार। ये ही सामगान में प्रयुक्त सप्त स्वर हैं। गान्धर्व में इनका अभिधान व क्रम इस प्रकार है—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, वैवत और निषाद। प्रातिशाख्य एवं शिक्षाग्रन्थों में इन्हीं सात स्वरों का विधान, बताया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक स्वर मुख्यतः तीन हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इन्हीं तीन स्वरों से साम के सात स्वर विकसित हुए हैं। और साम के उन्हीं सात स्वरों को नामान्तर से गान्धर्ववेद में स्वीकार किया गया है। उक्त गान्धर्व स्वरों से ही लौकिक स्वरों का विकास हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिनय दर्पण— (घोष) भूमिका, पृ०—19।
2. भरतभाष्य नान्यदेव— भारतीय साहित्य पृ०—67।
3. इण्डियन कल्चर खण्ड—4—संख्या—2, पृ० 152 (ऋग्वेद एवं मोहनजोदड़ो शीर्ष लेख)।
4. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ०—29।
5. विश्व का संगीत—भारतीय साहित्य — पृ०—63।
6. भारतीय साहित्य (संगीत परम्परा और भरतार्णव) वर्ष 14 पृ०—61।
7. वीणवादन तत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
8. तालज्ञशवाप्रयासेन मोक्षमार्ग च विन्दति (याज्ञवल्क्यस्मृति 41114)।